✱ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ✱

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष १० { गौराब्द ४७९, मास—मधुसूदन २९, वार—गर्भोदशायी
शुक्रवार, ३० वैशाख, सम्वत् २०२२, १४ मई १९६५ } संख्या १२

श्रीनृसिंह-स्तवः

[श्रील-श्रीधरस्वामि-विरचितः]

जय जयाजित जह्यग-जङ्गमावृतिमजामुपनीत-मृषागुणाम् ।
नहि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी, निगमगीत-गुणार्णवता तव ॥१॥
द्रुहिण-वह्नि-रवीन्द्रमुखामरा,जगदिदं न भवेत् पृथगुत्थितम् ।
बहुमुखैरपि मंत्रगणैरजस्त्वमुरुमूर्त्तिरतो विनिगद्यसे ॥२॥
सकल-वेदगणेरित सद्गुणस्त्वमिति सर्वमनीषि जना रताः ।
त्वयि सुभद्रगुण-श्रवणादिभिस्तव पद-स्मरणेन गतक्लमाः ॥३॥
नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि, श्रवण-वर्णन-संस्मरणादिभिः ।
नरहरे न भजन्ति नृणामिदं दृतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः ॥४॥

त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतबन्धनम् ।
त्वदङ्घ्रिसेवामादिश्य परानन्द निवर्त्तय ॥ ७ ॥
त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह ।
कदा ममेदृशं जन्म मानुषं सम्भविष्यति ॥ ६ ॥
क्वाहं बुद्ध्यादि संरुद्धः क्व च भुमन् महस्तव ।
दीनबन्धो दयासिन्धो भक्तिं मे नृहरे दिश ॥११॥
यत्सत्त्वतः सदाभाति जगदेतदसत् स्वतः ।
सदाभासमसत्यस्मिन भगवन्तं भजाम तम् ॥१३॥
तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वता—
दटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान् ।
यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादै—
र्हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति ॥१४॥
संसारचक्र-क्रकचैर्विदीर्ण—
मुदीर्ण नानाभवतापतप्तम् ।
कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं,
त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम् ॥१६॥
यदा परानन्द गुरो भवत्पदे,
पदं मनो मे भगवल्लभेत ।
तदा निरस्ताखिल-साधनश्रमः
श्रयेय सौख्यं भवतः कृपातः ॥२०॥
भजतो हि भवान् साक्षात् परमानन्द चिद्घनः ।
आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदार-सुतादिभिः ॥२१॥
मुञ्चन्नङ्ग तदङ्गसङ्गमनीशं त्वामेव सञ्चिन्तयन्
सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन् ।
नित्यं तन्मुख पङ्कजाद्विगलित-त्वत्पुण्यगाथामृत-
स्रोतः संप्लव-संप्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत् ॥२२॥
उद्भुतं भवतः सतोऽपि भुवनं सन्नैव सर्पः स्रजः ।
कुर्वत् कार्यमपीह कुटकनकं वेदोऽपिनैवंपरः ॥
अद्वैतं तव सत् परन्तु परमानन्दं पदं तन्मुदा
वन्दे सुन्दरमिन्दिरानुत हरे मा मुञ्च मामानतम् ॥२३॥
मुकुट-कुण्डल-कङ्कण-किङ्किणी,
परिणतं कनकं परमार्थतः ।
महदहंकृति-ख-प्रमुखं तथा
नरहरेर्न परं परमार्थतः ॥२४॥
नृत्यन्ती तव वीक्षणाङ्गनगता काल-स्वभावादिभि—
र्भावान् सत्त्व रजोस्तमोगुणमयानुन्मीलयन्ती बहून ।
मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं सम्मर्दयन्त्यातुरं
माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वमेव तां वारय ॥२५॥
दण्डन्यासमिषेण वंचित-जनं भोगैकचिन्तातुरं
समूह्यस्तमहर्निशं विरचितोद्योगक्लमैराकुलम् ॥
आज्ञालङ्घिनमज्ञमज्ञजनतो सम्माननां-सम्मदं
दीनानाथ-दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहि माम् ॥२६॥
अवगमं तवं मे दिश माधव,
स्फूरति यन्न सुखासुखभ्रमः ।
श्रवण वर्णन, भावमथापि वा-नहि
भवामि यथा विधि-किङ्करः ॥२७॥
श्रुतयो विदुरस्तमनन्त ते
न च भवान् न गिरः श्रुतिमौलयः ।
त्वयि फलन्ति यतो नम इत्यतो
जय जयेति भजे तव तत्पदम् ॥२८॥
सर्वश्रुति शिरोरत्न-निराजित-पदाम्बुजम् ।
भोग-योगप्रदं वन्दे माधवं कर्म्मि-नम्रयोः ॥२९॥

अनुवाद—

(१) हे अजित ! आप जड़-जङ्गम समस्त प्रकार-के प्राणियोंके स्वरूपको आच्छादित करने वाली अनित्य गुणोंकी आश्रय-स्वरूपा मायाका विनाश कर अपना पराक्रम दिखलावें—अपनी विजयकी घोषणा करें। आपके बिना इस विश्वमें कोई भी कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है ॥१॥

(२) ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य और इन्द्र आदि देवता एवं यह विश्व आपसे स्वतन्त्र रूपमें उत्पन्न नहीं हो सकते। इसलिये अनेक मंत्र आपको ही 'अज' और 'विराटमूर्त्ति' बतलाते हैं ॥२॥

(३) निखिल वेद आपकी गुणावलीका प्रचार करते हैं। आपके परम मङ्गलमय गुणोंके श्रवण और कीर्त्तन आदि द्वारा सारे मनीषिजन आपके चरण-कमलोंमें अनुरक्त रहते हैं तथा आपके चरण कमलोंका स्मरण कर समस्त प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पा लेते हैं ॥३॥

(४) हे नृसिंह देव ! नर शरीर पाकर भी यदि मनुष्य श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण आदि द्वारा आपका भजन नहीं करता है, तो उसका साँस ग्रहण करना अर्थात् जीवन धारण करना प्राणहीन हाथीके समान व्यर्थ ही है ॥४॥

(५) हे ईश्वर ! हे परमानन्द ! मैं आपका (अणु) अंश हूँ। आप मुझे अपने श्रीचरणकमलों-की सेवा प्रदान कर मेरे माया-बन्धनको खोल दें ॥५॥

(६) आप जगन्नाथ हैं, आप ही परमात्मा हैं। आपके चरणकमलोंमें मेरा मन लग जाय। आपकी सेवाके लिये सब तरहसे योग्य मेरा मनुष्य-जन्म कब होगा ? ॥६॥

(७) हे भूमा पुरुष ! हे दीनबन्धो ! हे दया-सागर ! कहाँ बुद्धि आदि द्वारा ढका हुआ मैं, और कहाँ आपका तेज या महिमाराशि। हे नरहरि ! मुझे भक्ति प्रदान करें ॥११॥

(८) जिनकी सत्तासे यह असत् (अनित्य) जगत् सद् (सत्य) जैसा प्रतीत होता है; इस जगत् में जो एकमात्र सत् पदार्थ हैं; उस भगवान्का हम भजन करते हैं ॥१३॥

(९) मानव भले ही सूर्यके तापमें बैठ कर कठोर तपस्या करे, पर्वतसे गिर पड़े, तीर्थोंमें भ्रमण करे, वेद और वेदान्त आदिका पाठ करे, विविध प्रकारके यज्ञोंद्वारा याग करे अथवा तर्क द्वारा वाद-विवाद ही क्यों न करे, बिना भगवान्की कृपासे कोई भी मृत्यु-को जीत नहीं सकता ॥१४॥

(१०) हे नृसिंह देव ! संसारचक्र रूपी आरेसे चीरे गये तथा नाना प्रकारके भवतापों अर्थात् संसारिक क्लेशोंसे तप्त, किसी प्रकार आपके निकट आये हुए तथा आपकी शरणमें आये हुए मनुष्योंका आप उद्धार करें ॥१६॥

(११) हे भगवन् ! हे परमानन्द गुरो ! जब मेरा मन आपके श्रीचरणकमलोंमें आश्रय लाभ करेगा, तब आपकी कृपासे ही साधन जन्य मेरा सारा श्रम दूर हो जायगा एवं मैं परम शान्ति प्राप्त कर सकूँगा ॥२०॥

(१२) हे नृसिंह देव ! भजन करनेवालोंके निकट आप साक्षात् परमानन्द चिद्घन प्राण-स्वरूप हैं; अतएव इसके बाद स्त्री-पुत्र आदिकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥२१॥

(१३) हे नरहरे ! स्त्री-पुत्र आदिका संग छोड़कर दिन-रात सर्वदा आपका चिन्तन करते-करते, अहङ्कार रहित साधुजन जिन-जिन आश्रमों और तीर्थोंमें वास करते हैं, उन-उन स्थानोंमें वास करता हुआ सदा-सर्वदा उन संतोंके मुखसे झरते हुए आपके पवित्र कथामृत रूपी झरनेमें स्नान करूँ, तो मेरा पुनर्जन्म न होगा ॥२२॥

(१४) फूलोंके हारसे निकला हुआ सर्प जैसे असत् होता है, उसी प्रकार सत्-स्वरूप आपसे उत्पन्न होने पर भी जगत् सत्य नहीं है, अर्थात् अनित्य है। स्वर्ण-राशि विविध प्रकारके अलङ्कारोंके रूपमें होकर भी जैसे अविकृत रहती है, परन्तु वेद वैसा नहीं है अर्थात् गौणार्थ द्वारा वेदार्थ भी कल्पित होता है। किन्तु आपका शुद्ध अद्वैत (अतुलनीय) भाव ही सत्य है। अतएव आनन्दपूर्वक रमा द्वारा सेवित आपके सुन्दर परमानन्दप्रद श्रीचरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ। हे हरे ! मैं आपके चरणोंका दास हूँ, मेरा परित्याग न करेंगे ॥२३॥

(१५) जैसे स्वर्ण मुकुट, कुण्डल, कंगन और नूपुरके रूपमें बदल करके भी वस्तुतः स्वर्ण ही रहते हैं, उसी प्रकार महत् या चित्त, अहंकार, आकाश आदि श्रीनृसिंह-विष्णुसे वस्तुतः भिन्न नहीं है ॥२४॥

(१६) आपके ईक्षणसे क्षुब्ध हुई आपकी माया नाचते-नाचते काल और स्वभाव द्वारा सत्त्व-रजस्तम-मय अनेक भावोंको प्रकाश कर मुझ आतुर-असमर्थ के सिर पर अत्यन्त निष्ठुर रूपसे आक्रमण कर मुझे पीस रही है; हे नरहरे ! मैं आपके शरणमें आया हूँ, आप अपनी मायाका प्रभाव रोकिये ॥२५॥

(१७) हे दीनानाथ ! हे अनाथबन्धो ! हे प्रभो ! मैं दण्ड और संन्यास ग्रहण करनेका छल कर केवल भोग चिन्तामें पीड़ित एक वंचित व्यक्ति हूँ। मैं सर्वदा अत्यन्त मोह प्राप्त हो रहा हूँ, मैं अपने तैयार किये हुए कर्म-क्लेशमें पड़कर बहुत ही दुःखी हूँ। हे परमानन्दमय प्रभो ! मैं आपकी आज्ञा न मानने वाला नितान्त मूर्ख हूँ तथा मूर्खोंके निकट सम्मान पाकर अतिशय अभिमानी हो गया हूँ; आप मेरी रक्षा करें ॥२६॥

(१८) हे माधव ! आपके स्वरूप - ज्ञान और आपके विषयमें श्रवण और कीर्त्तनमें आसक्ति पैदा करें, जिससे मुझे विषयजन्य सुख - दुःख स्पर्श न करें और जिससे मैं केवल प्रेम - शून्य विधियोंका दास न हो जाऊँ ॥२७॥

(१९) हे अनन्त ! देववृन्द आपका अन्त नहीं जानता, आप भी अपना अन्त नहीं जानते, वेद भी आपका तत्त्व निरूपण करनेमें समर्थ नहीं हैं; इस-लिये आपको नमस्कार है। 'आपकी जय हो', 'जय हो' इत्यादि वचनोंका उच्चारण कर मैं आपके उन दुर्लभ चरणकमलोंका भजन करता हूँ ॥२८॥

(२०) कर्मी और भक्तके लिये जिनके चरणकमल क्रमशः भोग और योगको देनेवाले हैं एवं जिनके चरणकमल निखिल श्रुति - समूहके शिरोरत्न समूह द्वारा निराजित होते हैं, उन माधवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२९॥

———

यथार्थ भोक्ता कौन है ?

जिसमें दूसरी वस्तुओंको भोग करनेकी योग्यता है, उसे भोक्ता कहते हैं तथा जो वस्तुएँ दूसरोंके द्वारा भोग करनेके योग्य हैं, उन्हें भोग्य कहते हैं। भोक्ता और भोग्य-तत्त्वके यथार्थ ज्ञानके अभावमें अंधेर मच जाता है अर्थात् भोक्तामें भोग्य और भोग्यमें भोक्ताका आरोप कर नरकका द्वार खोल लेते हैं। जिस प्रकार भ्रान्ति दूर होने पर मरुभूमिमें जलके बदले प्रचण्ड तप्त बालुका राशि दृष्टि गोचर होती है, तथा जलाशयको छोड़कर कहीं भी दूसरी जगह जल पाना असम्भव है—ऐसा ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार यथार्थ ज्ञानकी भूमिकामें भोग्य-पदार्थोंमें भोक्ताका दर्शन नहीं—भोग्यका ही दर्शन सिद्ध होता है।

हमलोग इन्द्रियोंकी सहायतासे जन्म-स्थिति-लय धर्मवाले बाह्य पदार्थोंके एवं उनके पारस्परिक सम्बन्ध सूचक लौकिक ज्ञानको प्राप्त करते हैं। परन्तु नित्य सत्यवस्तु और तत्सम्बन्धी। अलौकिक ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये शास्त्रों के ऊपर निर्भर होनेके अतिरिक्त और कोई दूसरी गति नहीं है। जिस समय परम भगवद्भक्त बालक प्रह्लादको प्रज्वलित अग्निकुण्ड में फेंका जा रहा था, उस समय लौकिक ज्ञान सम्पन्न लोगोंने यह समझ लिया कि अब प्रह्लाद बच नहीं सकता, इस बार वह अवश्य ही आगमें जल कर भस्मीभूत हो जायगा। परन्तु प्रह्लाद महाराज एवं दूसरे भक्तोंके हृदयमें पूर्वोक्त निराधार-धारणाके उदयका कोई स्थान न था। "कौन्तेय प्रतिजानिहि न मे भक्तः प्रणश्यति"—इस भगवद्वाणी पर पूर्ण विश्वास रहनेके कारण उनको यह—दृढ़ विश्वास था कि भगवान् प्रह्लादकी अवश्य ही रक्षा करेंगे। परन्तु वे किस प्रकार रक्षा करते हैं—यह देखनेके लिये उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। आग जिनसे दाहिका शक्ति प्राप्त करती है, वे प्रभु इच्छा करते ही आगसे उस शक्तिको निकाल भी सकते हैं। प्रह्लादके सम्बन्धमें भी यही बात हुई। दहकती हुई आगमें प्रह्लादको झोंक दिया गया, परन्तु प्रह्लादका एक केश भी नहीं जल सका। लौकिक ज्ञानमें प्रमत्त मूढ़ व्यक्ति इस उपाख्यानकी सत्यता पर विश्वास न कर उसे धृष्टतापूर्वक कोरी कल्पना ही बतलायेंगे। परन्तु हम इतिहासमें ऐसा देख पाते हैं कि बहुतसे लौकिक ज्ञान-सम्पन्न नास्तिक व्यक्ति कालके प्रभावसे सुकृति-सम्पन्न होकर अंतमें शास्त्रोज्ज्वला बुद्धिको प्राप्त हुए हैं तथा ऐसे-ऐसे भक्तिपूर्ण उपाख्यानों पर विश्वास करके भगवत् सेवोन्मुख हुए हैं।

लौकिक ज्ञानकी हेयता और असारता हृदयंगम होनेपर जीव शास्त्रानुशीलनमें प्रवृत्त होते हैं तथा शास्त्रों से उन्हें ऐसा ज्ञान होता है कि श्रीभगवान् ही एकमात्र आदि और सत्य पदार्थ हैं। वे भगवान् सर्व शक्तिमान हैं तथा अपनी अघटन घटन-पटीयसी शक्तिका अवलम्बन कर उन्होंने दूसरे पदार्थोंकी सृष्टि की है। जिस प्रकार मिट्टीसे घड़ा आदि अनेकों छोटे बड़े मिट्टीके बर्तन पृथक्-पृथक् आकारमें उत्पन्न होने पर भी वे अपने मूल कारण—मिट्टीको आश्रय करके ही

अपनी-अपनी सत्ता प्रकाश करनेमें समर्थ होते हैं, उसी प्रकार भगवान्‌के द्वारा सृष्ट पदार्थ भी पृथक्-पृथक् रूपमें अवस्थित होने पर भी अपने मूल कारण रूप भगवत् तत्त्वको आश्रय करके ही ज्ञात या अज्ञात भावसे अपनी-अपनी सत्ता रखनेमें समर्थ हैं। इस प्रकार यह देखा जाता है कि 'हम अमुकके पुत्र हैं, हम अमुक देशके निवासी हैं'—ऐसी - ऐसी लौकिक ज्ञान-निष्ठ धारणाएँ शास्त्रके अनुशीलनके प्रभावसे क्रमशः बदल जाती हैं तथा उनके बदलेमें हमारे हृदयमें ऐसा अलौकिक ज्ञान भर जाता है कि हम माया रचित स्थूल-सूक्ष्म शरीर नहीं हैं; बल्कि भगवानद्वारा प्रकटित शुद्धजीव हैं और उनके आश्रय से ही हम विद्यमान हैं । अलौकिक ज्ञानके प्रभावसे लौकिक ज्ञान शीघ्र ही तिरोहित हो जाता है और परमानन्दकी प्राप्ति होती है ।

अलंकार शास्त्रमें ऐसा कहा गया है कि आश्रय जातीय पदार्थका एकमात्र धर्म है—विषय जातीय पदार्थकी सेवा करना । जैसे आश्रय जातीय ज्योत्स्ना-प्रकाशिका-शक्ति अपने विषय जातीय चन्द्रकी महिमा का ही प्रकाश करती है, दूसरोंकी महिमाका प्रकाश नहीं करती, ठीक वैसे ही आश्रयजातीय निखिल जीवोंके स्वरूपके स्वभावमें उनके विषयजातीय भगवान्‌की सेवा करने तथा उनके नाम-रूप-गुण-लीलाके श्रवण-कीर्तन और स्मरणात्मक कार्यके अतिरिक्त किसी भी बाह्य लौकिक ज्ञानसे उत्पन्न कर्तव्य बुद्धिनिष्ठ क्रियाका परिचय असम्भव है । कुछ लोग ब्रह्म-गायत्रीके—"धियो यो नः प्रचोदयात्"—इस पदका ऐसा काल्पनिक अर्थ लगाते हैं कि 'श्री भगवान् ही हमारी बुद्धि वृत्तिके प्रेरक हैं । हम भला-बुरा जो कुछ करते हैं—भगवानकी ही प्रेरणासे करते हैं; इसलिये यह कर्म अच्छा है, यह बुरा है—ऐसा विचार करना निरर्थक है । बल्कि ऐसी विचार बुद्धि का दमन करनेके लिये ही सब प्रकारके कर्मोंमें प्रेरणा देनेवाले भगवत्-तत्त्वके ध्यान करनेकी व्यवस्था दी गयी है ।' ये लोग अपने मतकी पुष्टिके लिये श्रीमद्भगवद्गीताके इस श्लोककी अवतारणा करते हैं—

"त्वया हृषिकेश हृदिस्थितेन यथा-
नियुक्तोस्मि तथा करोमि ।"

वे इस श्लोककी भी पहलेकी भाँति यह व्याख्या करते हैं कि भगवान् जीवोंके हृदयमें स्थित होकर जैसी प्रेरणा देता है, जीव वैसा ही करता है । इस लिये जो कुछ भी होता है भगवान् ही कराते हैं । जीवका इसमें कोई हाथ या स्वतन्त्रता नहीं है । वे लोग श्रोताओंके हृदयमें इस धारणाको बद्धमूल करने के लिये सूर्यकी किरणोंका दृष्टान्त देते हुए कहते हैं कि जैसे किरणें बिना किसी प्रकारका विचार किये ही पापियों और पुण्यात्माओंको समभावसे प्रकाश देती हैं, इसके लिये वे पुण्य-पापकी भागी नहीं बनतीं; बिना विचार किये सबको समभावसे आलोक प्रदान करना ही उनका धर्म है, वैसे ही मनुष्य भी विचारशून्य होकर सत्-असत्, पाप-पुण्य कोई भी कर्म कर सकता है, ऐसा करनेसे उसका तनिक भी अनिष्ट नहीं होगा, क्योंकि पाप-पुण्य आकाश कुसुम की भाँति सर्वथा मिथ्या एवं कपोल-कल्पित है ।

साधारण विवेकशून्य लोग उपर्युक्त प्रचारकोंकी आपातरमणीय, किन्तु भित्तिरहित विचारोंको ही

ठीक समझने लगते हैं; परन्तु थोड़ा सा शास्त्रानुगत विचार करने पर उस विचारकी असारता समझी जा सकती है। सूर्यकी किरणें जड़ पदार्थ हैं। उनमें भला-बुरा विचार करनेकी शक्ति नहीं है। वे सर्वथा नैसर्गिक नियमोंके अधीन हैं। एक मात्र मनुष्य ही हिताहित विचार करनेमें समर्थ है। वह शास्त्रोंकी सहायतासे ही यथार्थ रूपमें हिताहितका विचार कर सकता है। शास्त्र-अनुशीलन करते समय भगवान्‌की कृपासे हमारी बुद्धिमें जो दिव्यालोक प्रतिफलित होता है, उससे हम भगवान्‌की सेवामें प्रवृत्त होते हैं। ऐसा होनेका कारण यह है कि यह दिव्यालोक भगवानके निकटसे हमारे हृदयमें आविर्भूत होकर हमें सेवा-कार्यमें नियुक्त करता है। इसीलिये शास्त्रमें श्रीभगवान्‌को हमारी बुद्धिका प्रेरक कहा गया है। गीतामें भगवानने स्पष्ट रूपमें कहा है—'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते' अर्थात् भगवान कृपा करके मनुष्यको तद्विषयकी ऐसी बुद्धि प्रदान करता है, जिससे वे भगवान्‌को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये करुणासागर भगवान हमें बुरे कर्मोंमें कदापि प्रेरित नहीं कर सकते। यदि हम असत् कर्मोंको भी सत्कर्म मानकर अथवा असत् और सत् दोनों ही प्रकारके कर्मोंको समान मानकर बिना विचारे करने लग जाँय तो हमारा समाज नष्ट हो जायगा, हमारा देश नष्ट हो जायगा, हमारी संस्कृति नष्ट हो जायगी और अंतमें हम भी नष्ट हो जायेंगे; हमें महानरक की कठोर यातनाओंको भोग करना पड़ेगा। हमें कोई भी उससे रक्षा न कर सकेगा। इसलिये उपर्युक्त प्रकारसे गायत्री आदिके कु-अर्थ करनेवालोंके कुसंगसे बचना चाहिए।

विषय और आश्रय—ये दोनों परस्पर स्वतन्त्र सत्ताके रूपमें प्रतिभात होने पर भी विषयकी (भगवानकी) सेवा करना ही आश्रय (जीव) का धर्म है तथा उस सेवाके द्वारा विषय-जातीय पदार्थ अर्थात् भगवान्‌की तृप्ति होने पर आश्रय जातीय जीव अपनेको कृतकृत्य अनुभव करता है तथा विषय के सुखी होने पर वह अपनेको सुखी मानता है। आश्रयजातीय पदार्थके नित्य या शुद्ध स्वभावमें स्वसुख योगकी वासना नहीं होती, बल्कि विषय जातीय पदार्थको सुख देना ही उसका स्वभाव होता है। इसीलिये उसे विषय जातीय पदार्थका अभिन्न हृदय कहा गया है। शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि भगवान लीलारसका आस्वादन करनेके लिये अपने मूल स्वरूपको ठीक रखकर स्वांश और विभिन्नांशके रूपमें अनेकों रूप धारण कर इन विभिन्न रूपोंसे अपने मूल रूपकी सेवा करनेका अभिनय कर रहे हैं। मूल रूपमे सेवा ग्रहण करते हैं, इसलिये उनको शास्त्रमें सेव्य या भोक्तृ-तत्त्व कहा गया है। दूसरे रूप सेवा करते हैं इसलिए उनको सेवक या भोग्य तत्व कहते हैं।

विषयासक्त मनुष्य अपने अभावकी पूर्त्तिके लिये कर्म करते हैं। परन्तु पूर्णानन्दमय श्रीभगवान तो पूर्ण हैं, उनको किसी प्रकारका अभाव नहीं है। इसलिये कर्मियोंकी भाँति उनमें कर्म-प्रवृत्ति नहीं होती। राजालोग घर बैठे सहज ही अर्थ द्वारा मृगका मांस खरीद कर खा सकते हैं, फिर भी वे जङ्गलमें जाकर मृगका शिकार करते हैं। परन्तु इसलिये उनका मृगयारूप कार्य किसी निष्ठुर मांसाशी व्याधके पशु-हत्याके समान घृणित व्यापार

नहीं समझा जाता। यहाँ मृगयाका अभिनय केवल इङ्गितज्ञापक लीलाका दृष्टान्त मात्र है । परन्तु भगवानका सृष्टि-कार्य लीलातत्त्वका परिस्फुट भावोद्दीपक व्यापार विशेष है अर्थात् इसमें लीलाके अतिरिक्त और कुछ भी दूसरा उद्देश्य नहीं है। यदि कोई स्थिर रूपसे चित्त रूपी गुफामें प्रवेश करे तो वह यह अनुभव कर सकता है कि उसके हृदयमें एक निरस्त-कुहक परमसत्य-तत्त्व नित्य सेव्यके रूपमें विराजमान हैं; देहके भीतर विराजमान होनेपर भी वह सदा-सर्वदा अनासक्त रूपमें अवस्थित है; साथ ही उसके रूप, गुण और लीला-माधुर्यके प्रति आकृष्ट होकर आश्रय जातीय जीवसमूह उसकी नित्यकाल व्यापी सेवाको प्राप्त करनेके लिये अपने-अपने तन, मन और वचनको नियुक्त कर रखे हैं। जो पूर्ण पुरुष है, जो पूर्णानन्द की खान हैं, उनकी सेवा से ही प्राणिसमूह तृप्त हो सकते हैं।

भगवत्सेवानन्दकी तुलना नहीं है। क्षुद्र धन-जन आदिकी सेवासे भगवत्सेवानन्दका एक कण भी प्राप्त नहीं हो सकता । धन-जन अतिशय क्षुद्र हैं। वे वैभिन्नांश होनेके कारण पूर्ण नहीं हैं, वे जान या मनजानमें जड़सेवानन्द रूप इंद्रियानन्दकी खोजमें लगे रहते हैं। ऐसी दशामें वे अवश्य ही भिखारी हैं। अतएव भिखारीके पास परमानन्द पानेकी आशा करना विडम्बना मात्र है । मनुष्यमात्र ही कभी किसीकी सेवा करना चाहता है या दूसरे किसी के द्वारा सेवित होना चाहता है। कौन सेवक है और कौन सेवा ग्रहण करनेका अधिकारी है—इस विषय में सम्यक् ज्ञानका अभाव रहने पर सेवा-प्रवृतिके निमेष होने पर भी मनुष्य सेवक तत्त्वकी सेवामें ही तत्पर हो जाता है और इस तरह वह वास्तव सेव्य-तत्त्वकी सेवा करनेसे वंचित हो जाता है । जैसे अन्धकार दूर होने पर रज्जुमें सर्प भ्रान्तिकी सम्भावना नहीं रहती, वैसे ही सेव्य-सेवकका यथार्थ ज्ञान उदित होनेपर सेव्य वस्तुकी ही सेवा साधित होती है, दूसरेकी नहीं होती । यह सेव्य-सेवक भोक्तृ-भोग्य-रूप तत्त्व-भ्रान्ति जबतक दूर नहीं होती, तब तक मानव-ज्ञानकी उन्नतिका पथ अवरुद्ध रहनेके लिये बाध्य है। इसलिये इस बाधाको दूर करनेकी नितान्त आवश्यकता है।

भारतमें छः दर्शन-शास्त्र प्रधान हैं। इन छहोंके अतिरिक्त भारत और पाश्चात्य देशोंमें और भी बहुतसे क्षुद्र-क्षुद्र दर्शन-शास्त्र प्रकटित हुए हैं। इन सबमें वेदान्तदर्शन ही सत् सिद्धान्तमूलक है। वेदान्त-दर्शनको समझनेके लिये श्रीमद्भागवतका पाठ करना आवश्यक है । श्रीमद्भागवतका अनुशीलन करनेके पश्चात् ही वेदान्त दर्शनका निगूढ़ रहस्य हृदयंगम किया जा सकता है तथा यह जाना जा सकता है कि श्रीभगवान ही एकमात्र सेव्य-तत्त्व हैं और दूसरे पदार्थ उनके सेवक-तत्त्व हैं। जिस दर्शन शास्त्रमें इस परतत्त्व सम्बन्धी त्रिकाल सत्य तत्त्वज्ञान का अभाव है, उसे भ्रान्त-दर्शन कहना ही युक्ति संगत है । अतएव सत् सिद्धान्तमूलक ज्ञानाग्नि द्वारा विरोधी कुसिद्धान्तोंको जला कर उनके बचे हुए भस्म को चित्त भूमिसे झाड़-बुहार कर साफ कर देना ही कर्तव्य है। काल-सर्पको दूध और खोई खिला कर पोसना बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। भोक्ता बनकर मुक्तिवादका आश्रय करनेसे अथवा भोगोंसे विरक्त होकर मुक्तिवादका अनुसरण करनेसे कभी भी कोई सुविधा होनेकी सम्भावना नहीं है।

हमलोग वास्तवमें भगवानके सेवक हैं अर्थात् भोग्य तत्त्व हैं। इसलिये नकल भोक्ताका स्वांग बना कर भोगोंमें प्रमत्त रहना हमारा कर्त्तव्य नहीं है। हमारी स्त्री और पुत्र आदि भी भोक्ता नहीं है, उनकी भोग-प्रवृतिमें सहायक बनना हमारे लिये और भी अन्यायका कार्य है। यदि सभी लोग सेवक भावसे भगवत् सेवामें तत्पर हो जाँय तो यह जगत् भोग-भूमि न रहकर आज ही वैकुंठ बन जायगा। उस समय भगवानको निवेदन किये हुए अन्न-व्यंजनको महाप्रसाद बुद्धिसे आस्वादन करके देह-यात्राका निर्वाह करना होगा अर्थात् उसे दाल-भात समझ कर भोक्तृबुद्धिसे आहार नहीं करना होगा। भगवान् के उच्छिष्ट—महाप्रसादको ग्रहण करनेके कार्यको भक्तिशास्त्रोंमें हरि-सेवाका अङ्ग बतलाया गया है। जो लोग भगवानको बिना भोग लगाए हुए पदार्थों को खाते हैं, वे अभक्त हैं; क्योंकि अपनेमें भोक्ता-बुद्धि ही उनको उक्त कार्यमें नियुक्त करती है। आश्रयजातीय जीवका अपनेमें भोक्ताभिमानका होना ही उसके अभक्त होनेका लक्षण है। समग्र संसारमें जहाँ भी जो कुछ भी भोगके उपकरण हैं, उन सबके भोक्ता भगवान हैं। भगवान उनको स्वयं भोगकर कृपापूर्वक जो कुछ प्रसादके रूपमें हमारे लिये छोड़ देते हैं, उस महाप्रसादके अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थमें सेवकका अधिकार नहीं है। इसलिये जो लोग महाप्रसादका सम्मान करते हुए भगवानकी सेवामें तत्पर हो जाते हैं, उनकी भक्तिलता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। उनका ही जीवन सार्थक है वे धन्य हैं।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

अभिलाषा

अहो हरि वेहू दिन कब ऐहैं।
जा दिन मैं तजि और संग सब हम ब्रज-वास बसैहैं॥
संग करत नित हरि भक्तनको हम नेकहु न अघैहैं।
सुनत श्रवन हरि कथा सुधारस महामत्त ह्वै जैहैं॥
कब इन दोउ नैनन सों निसि दिन नीर निरंतर बहिहैं।
रीचन्द श्रीराधे राधे कृष्ण कृष्ण कब कहिहैं॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी

धर्माडम्बर

बहुतसे व्यक्ति बाहरसे धर्मभाव दिखलानेके लिए बड़े प्रयत्नशील रहते हैं; लोग उन्हें भक्त या धार्मिक कहें—ऐसी प्रबल आकांक्षा उनके हृदयमें सदैव विद्यमान रहती है । हृदयमें लेशमात्र भी धर्मभाव अथवा भगवद्विश्वास न रहने पर भी बाहरसे अपने आपको परम धार्मिक पुरुष बतलाना चाहते हैं। इस प्रकार कितने लोग वैष्णव या साधु सन्तोंका चिन्ह धारण करके किस प्रकार कर्म इत्यादि करते हैं, इसकी गणना नहीं की जा सकती। यह एक भीषणतम अपराध है। इससे भगवानके चरणों-से अत्यन्त दूर हो जायेंगे, ऐसा डर उनके हृदयमें तनिक भी स्थान नहीं पाता । भगवान दाम्भिक व्यक्तियों पर कृपा नहीं करते। भगवानकी कृपा पाने के लिए अतिशय नम्र और सहिष्णु होनेकी आव-श्यकता है। तब हम लोगोंका अहंकार किस लिए है ? यदि वास्तवमें भगवद् चरण लाभ करनेका ही उद्देश्य है, तो फिर कपटता करके बाहरमें धर्मभाव दिखानेसे क्या उद्देश्य सफल होगा ? संसारमें न तो भक्त बोलेंगे और न धार्मिक बोलेंगे, उससे हमको क्या आएगा ? श्रीचैतन्य महाप्रभुने भक्तोंके लिए कहा था—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
"अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

—यदि वास्तवमें भगवद् चरण प्राप्त करना है, और यदि उस विमल आनन्दका उपभोग करनेकी इच्छा है, तो हे मानव ! नीच-से-नीच होने पर भी शुद्ध चित्तसे श्रीनाम कीर्तन करो, प्रेम अपने आप उदय होगा । कीर्तनका अर्थ कोई यह न समझे कि उच्च स्वर से ही भगवन्नामको कीर्तन कहते हैं। कीर्तनके अनेक प्रकार हैं। वैष्णवोंने कहा है—

नित्य सिद्ध कृष्ण प्रेम साध्य कभु नय ।
श्रवणादि शुद्धचित्ते करये उदय ॥

—साधनके द्वारा जो साध्य वस्तु प्राप्त होती है, वह अनित्य है। अतएव कृष्ण दास्यरूप विमल प्रेम साध्य वस्तु नहीं है; वह तो अपने आप उदय होता है। सूर्य नित्यसिद्ध है, किन्तु वारिद समूहमें आवृत होकर जिस प्रकार दर्शन नहीं किया जा सकता, कृष्ण दास्यरूप विमलप्रेम भी उसी प्रकार हमारे हृदयमें मायारूपी मेघके द्वारा आच्छन्न हैं। वारिद समूहके हट जाने पर सूर्यका जिस प्रकार प्रकाश होता है, कृष्ण दास्य-रूप विमल प्रेम भी उसी प्रकार है। शुद्धचित्तसे श्रीनाम कीर्तनादि करनेसे हृदय जब निर्मल होगा अर्थात माया रूपी मेघसमूह जब हृदयसे अन्तर्हित होंगे तभी सूर्यरूपी विमल प्रेमका अपने आप उदय होगा, अन्यथा बाहरमें धर्मभाव दिखानेसे विमल आनन्दका उपभोग नहीं किया जा सकेगा।

भक्तगण ! हमें आशीर्वाद करें, जिससे हम निरपराधी होकर शुद्धचित्तसे श्रीनाम कीर्तनादि कर सकें।

—जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

अनुवादकः—ओमप्रकाश दासाधिकारी "साहित्यरत्न"
बी. ए. (उत्तरार्द्ध)

———

सनातनका बन्धन-मोचन

(नाटिका)

पात्र परिचय

बादशाह हुसैन शाह (गौड़ प्रदेशके सम्राट)
सनातन या साकर मल्लिक (प्रधान मन्त्री)
केशव छत्री (राज अनुचर)
ईशान (प्रधान मन्त्रीका सेवक)
श्रीकान्त (प्रधान मन्त्री सनातनके बहनोई)
भट्टाचार्य (पाठक)
प्रथम नागरिक
द्वितीय नागरिक
गायक
वैद्य
चन्द्रशेखर (काशीमें रहनेवाले महाप्रभुके एक भक्त, जिनके यहाँ महाप्रभु ठहरे थे)
सेन्याध्यक्ष
पथिक
भुइंया सरदार
महाप्रभु
श्रीरूप पाद (सनातनके छोटे भाई)
प्रथम वैष्णव
द्वितीय वैष्णव
गुप्तचर

प्रथम अङ्क

प्रथम दृश्य—गौड़का राजप्रासाद

बादशाह हुसैन शाह और प्रधान-मन्त्री साकर-मल्लिक (सनातन) का प्रवेश।

बादशाह—(सिंहासन पर बैठते हुए) साकर-मल्लिक ! तुम्हारे समान सुदक्ष और बुद्धिमान मन्त्री रहते हुए भी मेरे राज्यमें इतना अनाचार क्यों ?

साकरमल्लिक—कैसा अनाचार सम्राट ?

बादशाह—केवल अनाचार ही नहीं,—अत्याचार भी है !

साकरमल्लिक—अत्याचार ?

बादशाह—हाँ, हाँ, तुम्हारे हिन्दू धर्मके एक संन्यासीने लाखों लोगोंको साथ लेकर मेरे राज्यके गाँवों एवं नगरोंमें तहलका मचा रखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई गुप्त शत्रु दलबलके साथ रहस्यमय ढंगसे मेरे राज्य पर आक्रमण कर रहा है। हो सकता है मेरा राज्य भी छिन जाय।

साकर—(भयभीत होते हुए) क्या कह रहे हैं सम्राट !

बादशाह—(अट्टहास पूर्वक) क्यों, भय होता है ?

साकर—हुजूर, वे तो संन्यासी हैं और दलबल उनके शिष्यभक्त हैं।

बादशाह—मैं कहता हूँ कि दलबल ही उसकी सेना है।

साकर—जी, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। वे सर्वस्व त्यागी हैं।

बादशाह—यदि मैं यह कहूँ कि यह संन्यासी गेरुआ वस्त्र पहनकर सर्वत्यागका स्वांग रचकर राज्यकी प्रजाको मेरे विरुद्ध उत्तेजित कर रहा है, तो ? (साकरमल्लिक की ओर देखते हुए) क्या भय हो रहा है ? ऐसा सोच रहे हो कि मैं संन्यासी की हत्या करनेका आदेश दूँगा; नहीं ?

साकर—जी हाँ, आप जैसा दयालु एवं न्याय कुशल राजा मैंने कभी नहीं देखा और न तो इतिहासमें ही मैंने कभी पढ़ा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप कभी भी न्याय विरुद्ध आदेश नहीं देंगे।

बादशाह—सचमुच तुम बहुत भयभीत हो रहे हो ! नहीं, तुम्हारी बात ही मानूँगा। तुम मुझे पहिचानते हो—साकर, तुमने ही मुझे पहिचाना है और कोई मुझे नहीं पहिचान पाया। तुम्हारे बाल जिस प्रकार पके हुए हैं उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि भी पकी हुई है। (साकरमल्लिककी पीठ ठोकते हुए) भाई, तुम लोग हिन्दू हो ! तुम्हारा धर्म तुम्हारे लिये अच्छा है। तो मैं उससे घृणा क्यों करूँगा भाई ! तुम्हारे संन्यासीकी मैं हत्या कर सकता हूँ ? तुम लोगोंका जिस प्रकार यह संन्यासी है,—हम लोगोंका उसी प्रकार पीर पैगम्बर है !

साकर—क्या आपने संन्यासीके इस भ्रमणको ही अत्याचार समझा था सम्राट् ?

बादशाह—नहीं,—नहीं, मंत्री ऐसी बात नहीं है। यह अत्याचार नहीं है, वह तो सुआचार और प्रचार है। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे संन्यासीकी दृष्टिमें हिन्दू और मुसलिममें कोई भेद नहीं है, इच्छा करने पर मुसलमान भी हिन्दू हो सकता है और हिन्दू भी मुसलमान हो सकता है,—सभी जातियोंके लोग चाहे वे किसी भी धर्मके मानने वाले क्यों न हों अपनी-अपनी उपासनाके अनुसार भगवद् राज्यमें प्रवेश कर सकते हैं—यही उनकी वाणी है। कोई-कोई हिन्दू, हिन्दू और मुसलमान आदि समस्त धर्मोंको समान बतलाते हैं। परन्तु मैं ही क्यों, बहुतेरे इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करते। फिर भी मैं इतना समझता हूँ कि मनुष्यके सदृश्य सभीका आकार होने पर भी प्रत्येककी चिन्ताधारा अलग-अलग होती है। चिन्ताधाराके पार्थक्यके अनुसार खुदाकी इस दुनियाँमें भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंकी सृष्टि होती है। जो कुछ भी हो, तुम लोगोंके इस नवीन संन्यासीके सम्बन्धमें मैंने कुछ सुना है; इसलिये उसको जीवन्त पीर बोलनेकी इच्छा होती है। धन्य है ! धन्य है !! तुम लोगोंने कलियुगमें भी अपने बीच इस महान पुरुषको पाया है।

साकर—तब अत्याचार कहनेका उद्देश्य क्या है, सम्राट ?

बादशाह—अत्याचार क्यों कहता हूँ जानते हो ? हम लोगोंकी यवन जातिके अनेक लोग इस संन्यासी से द्वेष करते हैं। केवल द्वेष ही नहीं, उसके प्रचार कार्यमें अर्थात् वे जिन मनुष्योंको हरिनाम दान करते हैं उसमें बाधा पहुँचाते हैं। अवश्य उसका फल भी अल्लाने दिया है,—अनेक प्यादे हरिनाम प्रचारमें बाधा पहुँचा रहे थे, हठात् अग्निकी लपटसे उनका मुख जल गया। फिर भी उनको ज्ञान नहीं हुआ। मुख जलनेसे बन्दरोंकी भाँति अवस्था होने

पर भी वे निर्लज्ज थे । वे सब चाहते हैं कि कोई हिन्दू न रहे, सभी मुसलमान बन जाएँ । (साकर मल्लिककी ओर देखकर) मैं समझता हूँ तुम्हें यह खबर मिल चुकी होगी ?

साकर—जी हाँ,सम्राट् ! मैं पहले ही कोतवाल साहबके मुँहसे यह संवाद पा चुका हूँ । फिर भी यह सत्य है कि अनेक हिन्दू भाई संन्यासीके प्रति शत्रुतापूर्ण आचरण करते हैं ।

बादशाह—तब तुमने उन सब निर्लज्जोंको निषेध करनेकी व्यवस्था क्यों नहीं की ?

साकर—हुजूर, भूल हो गई !

बादशाह—यह तुम्हारी इच्छाकृत भूल है, साकर! तुम जिस प्रकार मेरे हृदयकी परीक्षा कर सकते हो, मैं भी उसी प्रकार तुमको पहिचानता हूँ ।

साकर—क्षमा करें सम्राट !

बादशाह—साकर ! तुम तो मुझे अच्छी तरह समझते हो, मैं चाहता हूँ जो जिस धर्मका पालन करना चाहते हैं, वे आनन्दसे उस धर्मका पालन करें । किसीके धर्मको किसी भी समय बाधा पहुँचाना उचित नहीं । हाँ, यदि स्वेच्छापूर्वक कोई किसी अन्य धर्मको ग्रहण करना चाहे तो इसमें किसी को कोई आपत्ति करनेकी बात नहीं है ।

[केशव छत्रीका प्रवेश । छत्रीको मालूम नहीं है कि महलमें बादशाह स्वयं उपस्थित हैं । छत्री महाप्रभुके आगमनकी वार्ता प्रधानमंत्री सनातनको बतलानेके उद्देश्यसे द्रुतगतिके साथ महलमें प्रवेश करता है]

छत्री—(महलके द्वारकी कुछ दूरीसे) मंत्रीवर, एक बड़े आनन्दका समाचार है। (महलमें प्रवेश करके बादशाहको देखकर सभय पत्थर की मूर्तिके समान निश्चल होकर)

बादशाह—क्या बात है छत्री ! क्या कोई सुसम्वाद बतानेके लिये आए हो मंत्रीके पास, क्या बात है ?

छत्री—(और भी अधिक भयभीत और संकुचित होकर हाथ जोड़े, खड़ा रहा ।)

बादशाह—कहो, क्या बात है ?

छत्री—(पहलेकी तरह चुप रहा)

बादशाह—(हँसते-हँसते) इस मुसलिम राजाके राज्यमें देखते हो तुम्हारे समस्त हिन्दू भयभीत रहते हैं । सुनो छत्री ! डरो मत । तुम अच्छी तरह समझ लो—यह मुसलमान राजा बिना किसी भेदभावके समस्त जाति और धर्मोंके लोगोंका सम्मान करना जानता है । आज जिसको देखकर तुम हिन्दू जातिके समस्त लोग बड़े आनन्दित हो रहे हो, उसको मैंने स्वयं महलकी छतसे प्रत्यक्ष रूपमें देखा है । मैंने देखा है उसके श्रीअंगमें वह रूप और शोभा है जो साधारण मनुष्यमें सम्भव नहीं है । (साकर मल्लिकके प्रति) मंत्री सुनो, मेरा आदेश है कि आजसे नगर भरमें ढोल पिटवा दो, कोई भी उस साधूके प्रति अत्याचार न करने पाये—जो ऐसा करेगा उसको कठिन दण्ड दिया जायगा ।

(प्रस्थान)

छत्री—अहो, बादशाह तो मालूम होता है कि आजकल सज्जन पुरुष हो गया है, मंत्रीवर !

साकर—ऐसा तो है ही, सब कुछ इच्छामयकी इच्छा है।

छत्री—इच्छामय कौन है ? इच्छामय क्या ये संन्यासी हैं।

साकर—हाँ-हाँ,—जो सोचते हो वही हैं।

छत्री—वे इच्छामय कबसे हुए ?

साकर—वे चिरन्तन इच्छामय हैं। अभी तुम उनको नहीं जान सकते हो; जिस दिन उनकी कृपा होगी उसी दिन जान पाओगे।

"ईश्वरेर कृपालेश हयत' जाहारे।
सेई से ईश्वर तत्त्व जानिवारे पारे॥"

छत्री—ये सब श्लोक-श्लोक मैं नहीं समझता हूँ। मेरे ऊपर उनकी कृपा कब होगी, बतलाओ तो।

साकर—वह मैं कैसे कह सकता हूँ ? विषयान्तर प्रश्नोंको इस समय छोड़ दो।

छत्री—मैं जब भी कुछ कहता हूँ तब ही विषयान्तर हो जाता है, न ? अच्छी बात है, अब मैं कुछ नहीं कहूँगा, आप कहिये मैं आपकी बात ही सुनूँगा।

साकर—तुमने उस संन्यासीको प्रत्यक्ष रूपसे देखा है ?

छत्री—जी हाँ, अवश्य देखा है।

साकर—उस संन्यासीको किस प्रकार देखा; बोलो तो ?

छत्री—सुन्दर,—गजब का सुन्दर !

साकर—फिर भी किस प्रकार सुन्दर देखा, बोलो तो ?

छत्री—किस प्रकार क्या ? जो सुन्दर है, वह सुन्दर है। और इस प्रकार सुन्दर है कि उसके समान और कुछ भी नहीं है बाबू। पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुख, विशाल नेत्र, शुक पक्षीके समान नासिका, और दाँत मानो मुक्ताओंकी पंक्तियाँ हों। शरीरका रङ्ग कच्चे सोनेके समान, गेरुआ रङ्गके अत्यन्त सुन्दर बहिर्वास और उत्तरीय तथा क्या ही सुन्दर फूलोंकी माला कण्ठमें शोभित हो रही है। दोनों चरण बिम्बाफलकी तरह लाल-लाल हैं ! हाथ-पैरोंके नख सूर्यकी किरणके समान चमक रहे हैं। दोनों हाथ इतने विशाल हैं—जो घोंटुओंका स्पर्श कर रहे हैं। देखो मन्त्रीवर मैंने जब उन्हें देखा तब मनमें हुआ—कि वे दोनों आँखोंके द्वारा मुझे इङ्गित कर पुकार रहे हैं और वे दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर इस प्रकार नाच रहे हैं, मानो मुझे हाथोंको हिला-हिलाकर बुला रहे हों। मैंने जितनी बार उन्हें देखा, तभी ऐसा लगा मानो वे मुझे बुला रहे हों। किन्तु मैं दूरसे ही प्रणाम करके चला आया। और सोचा कि यह खबर आपको देनी ही होगी। (मन्त्री साकर मल्लिकके प्रति लक्ष्य करके) क्या हुआ मन्त्रीवर, उस तरफ क्या देख रहे हैं ?............एक दृष्टिसे देख रहे हो। क्या कुछ सोच तो नहीं रहे हो ?

साकर—कुछ भी नहीं सोचता हूँ। अच्छा, अभी चलो। राजाके हुक्मका पालन तो करना ही होगा !

छत्री—अभी किसलिये हुकुम हुआ ?

साकर—क्या तुमने सुना नहीं कि बादशाह क्या कह गये ? इतनी जल्दी भूल गया ?

छत्री—ओह ! अब याद आई। यह तो अच्छी बात है। इसमें हम ही लोगोंका कल्याण है।

साकर—हाँ भाई, अभी चलें (दोनोंका प्रस्थान)

(क्रमशः)

—श्रीचितरंजन मण्डल

अनुवादकः—ओमप्रकाश दासाधिकारी "साहित्यरत्न" बी. ए. (उत्तरार्द्ध)

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

द्वितीय वृष्टि (चतुर्थ-धारा)

आश्रम विचार

मनुष्यके स्वभावसे कर्मका जन्म होता है। मनुष्य के आश्रममे कर्मकी स्थिति है। जो मनुष्य जिस आश्रममें अवस्थित होता है, उसी आश्रमके अनुसार वह कर्म करता है। इसलिये वर्ण और आश्रम, ये दोनों परस्पर अनुस्यूत हैं। अतएव कर्मको वर्णाश्रम धर्म कहते हैं। आश्रम चार हैं—(१) ब्रह्मचर्य, (२) गार्हस्थ्य (३) वानप्रस्थ और (४) संन्यास*।

ब्राह्मण-स्वभाववाले ब्रह्मचारीका कृत्य

ब्राह्मणस्वभाव सम्पन्न व्यक्तिओंका ब्रह्मचर्यमें अधिकार है। संयत चित्तसे, शुद्धाचारके साथ, अत्यन्त नम्र भावसे, नाना प्रकारके शारीरिक क्लेशों को स्वीकार पूर्वक गुरुकुलमें वास करते हुए अध्ययन की समाप्ति तक ब्रह्मचर्यका अवलम्बन करना चाहिए। अध्ययन समाप्त हो चुकने पर गुरुको दक्षिणा देकर उनकी अनुमति लेकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिए।

चारों वर्णोंका गार्हस्थ्य धर्म

मुरारी गुप्तकी प्रशंसाके प्रसंगमें श्रीचैतन्यचरितामृतमें इस प्रकार उल्लेख है—

प्रतिग्रह ना करे ना लय कार धन।
आत्मवृत्ति करि करे कुटुम्ब भरण॥

गृहस्थाश्रममें सभी वर्णोंका अधिकार है। ब्राह्मणगण ब्रह्मचर्यके परचात् गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हैं, क्षत्रियगण अल्प परिमाणमें उपयुक्त शास्त्रों का अध्ययन करके गुरुकुलसे लौटकर गृहस्थाश्रम ग्रहण करते हैं। वैश्यगण पशुपालन, वाणिज्य और कृषि-कार्योपयोगी वेदविद्याका अध्ययन करके गृहस्थ हुआ करते हैं। शूद्रगण उपयुक्त आयु होते ही गृहस्थ हो सकते हैं। किस व्यक्तिका किस वर्णधर्ममें अधिकार है, इस विषयमें पिता, कुल पुरोहित, समाजके विशिष्ट व्यक्ति और भूस्वामी—ये लोग मिल कर उस बालकका अध्ययन काल उपस्थित होने पर विचार कर स्थिर करेंगे। जिस बालकका जैसा

---

* विप्रस्याध्ययनादीनि षड्न्यस्य प्रतिग्रहः। राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद्वा करादिभिः॥
वैश्यस्तुवार्तावृत्तिस्यान्नित्यं ब्रह्मकुलानुगः। शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत्॥
(भा० ७।१२।१४-१५)

वृत्तिः सङ्करजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत्। अचौराणाम पापानामन्त्यजान्तेवसायिनाम॥॥ (७।१२।३०)

वृत्त्या स्वभाव कृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत्। हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात्॥
(भा० ७।१२।३२)

स्वभाव लक्षित हो, उसे उसीके अनुरूप अध्ययन आदि कार्यमें नियुक्त करना चाहिए। जिनकी अध्ययन-कार्यमें नितान्त रुचि नहीं है, अथच सेवा कार्यमें स्पृहा और दक्षता है, उन्हें अध्ययन-कार्यमें नियुक्त करना निष्फल है। ऐसा जान कर उन्हें शूद्र जानकर सेवा कार्यमें ही पटु होनेके लिये सुयोग प्रदान करना चाहिए।

गृहस्थ होनेके लिये सबसे पहले अर्थ उपार्जन करना आवश्यक है। भिन्न-भिन्न वर्णके अर्थोपार्जन के लिये अलग-अलग उपाय निर्दिष्ट हैं। यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह—ये छः कर्म ब्राह्मणके लिये निर्दिष्ट हैं। इनमेंसे वे लोग याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह द्वारा अर्थ उपार्जन करेंगे तथा यजन, अध्ययन और दान द्वारा सांसारिक अवस्थामें व्यय करेंगे। क्षत्रियगण कर शुल्क आदि ग्रहण और अस्त्र व्यवसाय आदि द्वारा धनोपार्जन करके संसार पालन और जीविका निर्वाह करेंगे। वैश्यगण पशुपालन, वाणिज्य और कृषिकार्य द्वारा तथा शूद्रगण तीनों वर्णोंकी सेवा द्वारा अर्थ संग्रहपूर्वक जीविका-निर्वाह करेंगे। आपत्काल उपस्थित होने पर ब्राह्मणगण क्षत्रिय और वैश्यके लिये निर्द्धारित व्यवसायको ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु विशेष विपत्ति उपस्थित होनेपर भी उक्त तीन वर्णों के लोग शूद्रका व्यवसाय ग्रहण नहीं करेंगे।

गृहस्थ व्यक्ति विधिपूर्वक विवाह करके सन्तान उत्पादन करेंगे। पिण्डदानके द्वारा पितरोंके प्रति कृतज्ञता स्वीकार, यज्ञद्वारा देवताओंका पूजन, अन्नादिके द्वारा अतिथियोंका सत्कार तथा सत्य व्यवहार द्वारा सब प्राणियोंका अर्चन करेंगे। परिव्राजक और ब्रह्मचारीगण केवल गृहस्थोंकी सहायतासे ही प्रतिपालित होते हैं। अतएव गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ आश्रम है।

वानप्रस्थका कृत्य

वानप्रस्थ तृतीय आश्रम है। आयु ढल जाने पर पत्नीको पुत्रके पास रखकर अथवा सन्तान पैदा होनेकी सम्भावना न रहने पर पत्नीको साथ लेकर वनमें गमनपूर्वक वानप्रस्थ अवलम्बन करना चाहिए। वहाँ रह कर अपनी आवश्यकता एवं अभावको सर्वतोभावेन कम-से-कम करना चाहिये। भूमि पर शयन, वृक्षके वल्कल द्वारा परिधेय और उत्तरीय ग्रहण, चौरकार्य परित्याग, मुनि वृत्ति अवलम्बन, त्रिसंध्या स्नान, यथासाध्य अतिथि-सेवा, फल-मूल भक्षन और निर्जन वनमें परमेश्वरकी आराधना—ये सब वानप्रस्थके कर्म हैं। सभी वर्णके लोग वानप्रस्थके अधिकारी हैं।

संन्यासका कृत्य

संन्यास आश्रम चतुर्थ आश्रम है*। संन्यासी को भिक्षु या परिव्राजक कहते हैं। पूर्वोक्त तीनों आश्रम के व्यक्ति जब नितान्त वैराग्यपर, संसारमें ममता शून्य, सर्वकष्टसहिष्णु, तत्त्वज्ञ, जनसंग-स्पृहारहित,

*यदि चात्मविजये यत्तः स्यान्निःसंगोऽपरिग्रहः। एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भैक्ष्यमिताशनः॥ (भा० ७।१५।३०)

ब्रह्मपर, निर्द्वन्द, सब प्राणियोंमें समबुद्धि, दयालु निर्मत्सर और योगयुक्त हो जाते हैं, तब वे संन्यास आश्रम ग्रहण करनेके अधिकारी होते हैं। संन्यासी को एक ग्राममें एक रातसे अधिक नहीं ठहरना चाहिए। नगरमें पाँच रातसे अधिक नहीं टिकेंगे। केवल चातुर्मास्यके समय किसी उपयुक्त स्थानमें विधिपूर्वक चार महिने तक निवास कर सकते हैं। प्रथम अवस्थामें केवल ब्राह्मणके घर पर भिक्षा ग्रहण करेंगे, ब्राह्मणके अतिरिक्त किसी दूसरेको इस आश्रम में प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य रहित व्यक्ति किसी भी आश्रमके योग्य नहीं हैं। दुर्बलोंके लिये आश्रम नहीं है। वे आश्रमवासियोंके अनुग्रहसे जीवन-निर्वाह करेंगे। आश्रमी वैसे असमर्थ लोगों की यथा शक्ति सहायता करेंगे।

स्त्रियोंके लिये उपयोगी आश्रम

स्त्रियाँ केवल गृहस्थाश्रममें रहेंगी। विशेष-अवस्थामें कोई-कोई स्त्रियाँ वानप्रस्थ भी ग्रहण कर सकती हैं। इन दोनों आश्रमोंके अतिरिक्त दूसरे आश्रमोंमें स्त्रियोंको प्रवेश नहीं करना चाहिए। यद्यपि कोई-कोई असाधारण शक्तिसम्पन्ना स्त्री विद्या, धर्म और सामर्थ प्राप्त कर ब्रह्मचर्य या संन्यास आश्रम अवलम्बन करके सफलता प्राप्त कर चुकी हैं अथवा सफलता प्राप्त कर सकती हैं, तथापि साधारणतः कोमलश्रद्ध, कोमल शरीर और कोमल बुद्धिवाली स्त्री जातिके लिये यह विधि नहीं है।

भली भाँति विचार करनेसे देखा जाता है कि गृहस्थाश्रम ही एकमात्र आश्रम है। अन्यान्य तीन आश्रम उसके आश्रय पर भी अवस्थित हैं। मानव जाति साधारणतः गृहस्थ है। विशेष अधिकार प्राप्त करने पर कोई-कोई ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम ग्रहण किया करते हैं। ऐसे लोगोंकी संख्या अति अल्प है। तथापि उन-उन आश्रमोंके कतिपय विशेष कर्माधिकार लक्षित होनेके कारण उन आश्रमों का भेद प्रदर्शित न होनेसे समाज-ज्ञानकी तात्त्विक अवस्था सिद्ध नहीं होती।

धर्मशास्त्रसमूह

बीस धर्मशास्त्रोंमें तथा पुराणादि स्मृति शास्त्रोंमें गृहस्थ आश्रमकी विधियोंका विस्तृत रूपसे वर्णन किया गया है। गृहस्थको किस-किस समयमें कौन-कौन कार्य करना चाहिये और कौन-कौन कार्य नहीं करना चाहिए—इसके सम्बन्धमें विभिन्न मनुओं, ऋषियों और प्रजापतियोंने अपने-अपने शास्त्रोंमें विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। उन्होंने उन शास्त्रोंमें गृहस्थोंके आह्निक, पाक्षिक, मासिक, षान्मासिक और वार्षिक सदाचारकी विधियों और कार्योंका उल्लेख किया है। वे विधियाँ अनेक हैं तथा देश और कालके अनुसार रूपान्तर योग्य हैं। इसलिये उनका संक्षेपमें ही उल्लेख किया जायगा।

श्रीमद्भागवतमें श्रीश्रीकृष्णचैतन्यदेव

श्रीगौडीय-वैष्णवाचार्योंने यह सुस्पष्ट प्रतिपादित किया है कि कलियुगमें वैष्णवोंके उपास्य तत्त्व श्री-श्रीगौरांगदेव (श्रीश्रीकृष्णचैतन्यदेव) हैं और वे स्वयं भगवान् आश्रयतत्त्व (क) हैं। सबसे प्रबल प्रमाण इस विषयमें श्रीमद्भागवतजीको माना गया है। सभी वैष्णवजन इस सात्वत् संहिताको सर्वाधिक प्रमाणकोटिमें स्वीकार करते आये हैं।

निमि राजाने जब नवयोगीश्वरोंसे भगवत्तत्त्वके विषयमें प्रश्न किया (ख), तब उन्होंने श्रीगौराङ्गदेवके रहस्यको स्पष्ट किया था। नवयोगीश्वरोंमेंसे करभाजन नामक ऋषिने सत्ययुग, त्रेता और द्वापरके उपास्य तत्त्वों और उनकी उपासना-पद्धतिका वर्णन कर उपसंहारमें कलियुगकी कथाका उपक्रम किया है—

'नाना तंत्रविधानेन कलावपि यथा शृणु।'

अर्थात् 'अब कलियुगमें नाना तन्त्रोंके विधि-विधानसे भगवान्‌की जैसी पूजा की जाती है, उसका वर्णन सुनो।'

ऐसा कह कर वे वर्तमान कलि और नाना कलिके उपास्य कौन हैं? तथा उनकी पूजाका विधान कैसा है? इसके उत्तरमें यह श्लोक प्रस्तुत करते हैं—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

(श्रीमद्भा. ११।५।३१)

कृष्णवर्ण—'कृ' और 'ष्ण'—ये दो वर्ण (अक्षर) हैं जिनमें अर्थात् जिनके 'श्रीकृष्णचैतन्य'—इस नामके अन्तर्गत कृष्णत्व (स्वयं भगवत्ता) सूचक 'कृ' और 'ष्ण'—ये दो वर्ण (अक्षर) विद्यमान हैं; अथवा जो सदा-सर्वदा 'कृष्ण' नाम 'वर्णन' (कीर्तन) करते हैं या परम करुणावश सब लोगोंको 'कृष्ण' नामका उपदेश करते हैं—वे श्रीकृष्णचैतन्यदेव ही 'कृष्णवर्ण' (ग) पदके उद्देश्य हैं। कान्तिमें 'अकृष्ण'

(क) जिनसे सृष्टि और प्रलय होता है तथा विश्वका प्रकाश होता है, वे प्रसिद्ध परब्रह्म परमात्मा ही 'आश्रय' हैं।

(ख) कस्मिन् काले स भगवान् किं वर्णः कीदृशो नृभिः।
नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम्॥ (श्रीमद्भा० ११।५।१९)

(ग) कृष्णवर्ण—का अर्थ कलियुगावतारी कृष्ण है। किन्तु श्रीराधाजीकी भाव-कान्ति ग्रहण करनेके कारण कृष्णकी कान्ति अकृष्ण = पीत = गौर हो गयी। जीव गोस्वामीका यही मत है—

श्रीराधिकाया कान्त्या अकृष्णं गौरम्, यद्वा द्वापरे कृष्णोऽवतरति तदैव कलौ श्रीगौरोऽप्यवतरतीति स्वारस्य-लब्धेः श्रीकृष्णाविर्भाव एवायं गौरऽत्यायाति।

(क्रम-संदर्भ ११।५।३२)

अर्थात् पीत (गौर) वर्ण हैं। उनके कमनीय अंग-प्रत्यङ्ग ही उपांग अलंकार हैं। विद्वद्वृन्द संकीर्तन प्रधान यज्ञ द्वारा उनकी उपासना करते हैं।

कवि कर्णपूर गोस्वामीने कृष्णचैतन्यकी व्युत्पत्ति निम्न प्रकारसे की है—

"कृष्णस्वरूपश्चैतन्यः कृष्णचैतन्य संज्ञितः"

आचार्योंका कथन है कि "तत्त्वमसि" वाक्य जीव पर घटित नहीं किया जा सकता। स्वरूपतः भेद रहनेपर जीवसे यह कहना उचित नहीं है कि 'तुम वह परब्रह्म हो'। अतः 'तत्त्वमसि' वाक्य की सार्थकता भी 'श्रीकृष्णचैतन्य' इस नाममें ही परिलक्षित होती है।

अन्यत्र भी श्रीगर्गाचार्य कृष्णके नाम-करण-प्रसङ्गमें श्रीनन्द महाराजसे प्रति युगोंके अवतारोंका इङ्गित रूपमें वर्णन करते हुए कहते हैं—

आसन वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनुः।
शुक्ल रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥
(श्रीमद्भा० १०।८।१३)

अर्थात, नन्द महाराज! तुम्हारे इस बालकने सत्ययुगमें शुक्ल वर्ण, त्रेतामें रक्त वर्ण तथा कलियुगमें पीतवर्ण धारण किये थे। अबकी यह कृष्ण वर्ण हुआ है। इसलिये इसका नाम 'कृष्ण' होगा।

तात्पर्य यह है कि कृष्ण ही कलियुगमें पीतवर्ण (गौरवर्ण) धारण करते हैं। वे पीतवर्ण भगवान ही "श्रीगौराङ्गदेव" हैं। 'आसन' यह अतीत कालका प्रयोग भविष्यत् कलियुगके पूर्व-पूर्व अवतारोंके विरुद्ध नहीं हो सकता। सारांश यह कि जिस द्वापरमें स्वयं-भगवान श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण होते है, उसीके परिवर्ती कलियुगमें श्रीगौरचन्द्र भी अवतीर्ण होते हैं।

श्रीजीव गोस्वामीके वचनोंसे भी इस अर्थकी पुष्टि होती है—

अन्तः कृष्ण बहिर्गौरं दर्शिताङ्गादिवैभवम्।
कली संकीर्त्तनाद्यैः स्मः कृष्णचैतन्यमाश्रिताः॥
(तत्त्वसन्दर्भ—२रा श्लोक)

[अङ्ग-उपाङ्गादि-वैभव-लक्षित भीतरमें साक्षात् कृष्ण और बाहरमें गौररूप कृष्णचैतन्यको कलियुगमें सकीर्तन आदि अङ्गोंके द्वारा आश्रय करता हूँ]

आदि पुराणमें भी लिखा है—

अहमेव द्विजश्रेष्ठ नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः।
भगवद्भक्तरूपेण लोकान् रक्षामि सर्वदा॥

इसके अतिरिक्त 'जन्माद्यस्य' (श्रीमद्भागवत १।१।१)—श्लोककी व्याख्या भी गौराङ्गपरक की जाती है। 'हम ध्यानोपलक्षित भक्ति मार्गसे श्रीकृष्णचैतन्य देवकी उपासना करते हैं।'

'जन्माद्यस्य'—श्लोकमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्वोंमें से अभिधेयको मुख्य रूपसे ग्रहण किया गया है।

वर्तमान कलियुगमें अभिन्न-कृष्ण—श्रीगौरसुन्दर ही गौड़ीय भक्तवृन्दके उपास्य हैं और वही आश्रय-तत्त्व हैं। यही इनके कथनका सारांश है।

श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य और भागवत एक ही हैं। विभिन्न महानुभावोंने अन्तर्निहित गूढ़ार्थ प्रकट करनेके लिये अपनी-अपनी युक्तियों और तर्कोंके आधार पर साम्प्रदायिक व्याख्याएँ की हैं। इसका

गूढ़तत्त्व भगवानकी कृपाके अभावमें बुद्धिगम्य नहीं है।

श्रीश्रीचैतन्यानुगत गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायगत श्रवण-कीर्तनका आधार भी श्रीमद्भागवत ही है—

(१) यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनात्
यत् प्रह्वणाद यत् स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥
(श्रीमद्भा० ३।३३।६)

तथा (२) अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥
(श्रीमद्भा० ३।३३।६)

श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें इसका नित्यप्रति पाठमें स्मरण किया जाता है—

किवा विप्र किवा शूद्र न्यासी केने नय।
जेई कृष्ण तत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय॥
नीच जाति नहे कृष्ण भजने अयोग्य।
सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य॥
जेई भजे सेई बड़ अभक्त हीन छार।
कृष्ण भजने नाही जाति कुल आदि विचार॥
दीनेर अधिक दया करे भगवान।
कुलीन पण्डित धनोर बड़ अभिमान॥

इसके अतिरिक्त इस सम्प्रदायमें अपनेको तृणसे भी अधिक दीन-हीन समझना, वृक्षकी भाँति सहिष्णुता धारण, स्वयं मानकी कामना न कर, दूसरोंको मान देना—इन चार शिक्षाओंका आचरण करके सदा हरिकीर्त्तन करना आदि भी श्रीमद्भागवतके आधार पर ही है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी कहते हैं—

तणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयो सदा हरिः॥

—विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी नव्य व्याकरण पुराणेतिहास-धर्मशास्त्र-सांख्याचार्य, काव्यतीर्थ एम. एम. साहित्यरत्न

श्रीचैतन्यदेव

प्रेमानामाद्भुतार्थः श्रवण पथ गतः कस्य नाम्नां महिम्नः।
को वेत्ता कस्य वृन्दावनविपिनमहामाधुरीषु प्रवेशः॥
को वा जानाति राधां परमरसचमत्कार माधुर्य सीमा।
मेकश्चैतन्यचन्द्रः परम करुणया सर्वमाविश्चकार॥—श्रीचैतन्यचन्द्रा. श्लोक १२६

प्रेमका ऐसा अद्भुत अर्थ किसने सुना था, भगवन्नामकी महिमाका ज्ञान किसे था, वृन्दावनकी परम माधुरीमें किसका प्रवेश था, अति चमत्कारपूर्ण माधुर्य रसकी पराकाष्ठा राधाको कौन जानता था? एकमात्र चैतन्यचन्द्रने ही अतिकरुणापूर्वक इन सबका आविष्कार किया है। अभिप्राय यह है कि श्रीप्रेम-तत्त्व, श्रीनाम-तत्त्व, श्रीवृन्दावन-तत्त्व और श्रीराधातत्त्वका सर्वप्रथम ज्ञान श्रीचैतन्यसे ही संसारको प्राप्त हुआ है।

प्रचार-प्रसंग

मेदिनीपुर जिलेके विभिन्न स्थानोंमें श्रील आचार्यदेव

श्रीपिछलदा गौड़ीय मठमें—श्रील आचार्यदेव शिष्य मण्डलीके साथ अगले दिन ७ फाल्गुन, शुक्रवारको खामटीसे २ मील पूर्व स्थित पिछलदामें समितिके शाखा मठमें पधारे तथा वहाँ २ घण्टा विश्राम कर खड्गपुरके लिये रवाना हुए।

श्रीगौर-वाणी-विनोद मठ, खड्गपुरमें आचार्य देव

८ फाल्गुन, शनिवारको ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी परम पुनीत आविर्भाव-तिथि—माघी कृष्ण-पञ्चमीके उपलक्ष्यमें श्रीगौर-वाणी-विनोद मठ, खड्गपुरके अध्यक्ष त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराज द्वारा आयोजित श्रीव्यासपूजाके विराट अनुष्ठानका पौरोहित्य श्रील आचार्यदेवने किया। शामको एक महती धर्मसभामें श्रील आचार्यदेवने सभापतिके आसनसे एक बड़ा ही सुन्दर दार्शनिक विचारपूर्ण भाषण दिया। भाषणकी लालित्यपूर्ण भाषा, दार्शनिक-विचार-धारा, सुन्दर एवं आकर्षक युक्तियाँ बड़ी ही प्रभावोत्पादक रही। उस उपदेश पूर्ण भाषणको अगली संख्यामें दिया जायगा।

काशीनगर (२४ परगना) में शुद्ध भक्तिका प्रचार—

२४ परगना (पश्चिम बंगाल) के अन्तर्गत काशीनगरके निवासी श्रीसनातन हलदार महोदयके विशेष आह्वान पर गत ३० मार्चको श्रील आचार्यदेव के आदेशानुसार श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक-त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज ग्यारह मठवासी संन्यासी-ब्रह्मचारियोंके साथ उक्त ग्राममें उपस्थित होकर ५ दिनोंतक विपुल रूपमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया है। इस प्रचारसे इस अंचलमें नव-जीवनका संचार हुआ है। इसके द्वारा विभिन्न प्रकारके पाषण्डमतोंका नग्न-स्वरूप प्रकाशित हुआ है। इन सबका शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके द्वारा विपुल रूपसे खण्डन कर शुद्धभक्तिकी प्रतिष्ठा हुई है। इस उपलक्ष्यमें तीन दिनोंमें तीन विराट धर्म-सभाओंका आयोजन किया गया था। तीनों धर्म-सभाओंका सभापतित्व त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने किया। त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिदण्डि महाराज, परमाद्वैती महाराज, पं. सुरेन्द्रनाथ (भट्टाचार्य) दासाधिकारी तथा श्रीसुदर्शन ब्रह्मचारीने प्रतिदिन सभामें भाषण दिये।

स्थानीय उच्च अंग्रेजी विद्यालयके प्रधान शिक्षक श्रीयुक्त कालीपद मुखर्जी महाशयने पहले दिन सभामें अतिथिका आसन ग्रहण किया। उन्होंने अपने भाषणमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रचारित शुद्ध भक्तिके सिद्धान्तोंके प्रति कटाक्ष करते हुए कुछ शंकाएँ उपस्थित कीं तथा सभापति महोदय से मीमांसाके लिये निवेदन किया। त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने विभिन्न

शास्त्रीय प्रमाणों तथा सुयुक्तियोंके आधार पर बड़ा ही चमत्कारपूर्ण एक दार्शनिक भाषण प्रदान किया, जिसमें उन्होंने बड़े ही प्रभावोत्पादक ढङ्गसे अतिथि महोदयके विचारोंका खण्डन करते हुए उनकी सारी शंकाओंका समाधान कर दिया। उनके शास्त्रीय विचारोंको सुनकर बीच-बीचमें श्रोतागण परमोल्लास से उच्च स्वरमें हरिध्वनि कर उठते थे। सभा समाप्त होने पर प्रधान शिक्षक महोदयने अत्यन्त विनीत भावसे सभापति महोदयके भाषणकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अन्यान्य दो दिनकी दो धर्म सभाओंमें स्थानीय प्रसिद्ध चिकित्सक डा. पुलिन बिहारी दैद्य महाशय तथा पं. सुरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य महोदय (श्रील प्रभुपाद के शिष्य) ने क्रमशः प्रधान अतिथिका आसन ग्रहण किया।

सभाके आरम्भ एवं अन्तमें मठके प्रधान कीर्तनीया श्रीमुकुन्द गोपाल ब्रह्मचारी, श्रीकनाई दास ब्रह्मचारी तथा श्रीस्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारीके मधुर एवं उपदेश पूर्ण कीर्तन श्रवण कर श्रोतागण बड़े ही मुग्ध हो पड़ते थे। सभामें प्रतिदिन लगभग ३००० श्रोता योगदान करते थे।

तीसरे दिन ३ अप्रैलके सवेरे विराट नगर-संकीर्तन हुआ। तदनन्तर उसी दिन श्रीसनातनदास हलदारके नव-निर्मित गृहमें गृह-प्रवेश उत्सवके उपलक्षमें वैष्णव होम और विराट संकीर्तनके पश्चात् उपस्थित ५०० लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

मईपीठ और सरबेड़िया (२४ परगना) में--

काशीनगरमें प्रचारके पश्चात् त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डि महाराज एवं श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमाद्वैती महाराज कतिपय ब्रह्मचारियोंके साथ खाड़ापाड़ा, मईपीठ और सरबेड़िया आदि स्थानोंमें प्रचार कर आजकल मेदिनीपुरके विभिन्न स्थानोंमें श्रीगौरवाणीका प्रचार कर रहे हैं।

श्रीव्यासपूजा

विगत ६ फाल्गुन, १८ फरवरी, बृहस्पतिवार श्रीगौड़ीय वेदान्त-समितिके प्रतिष्ठाता-आचार्य परमहंसकुल मुकुट-मणि ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज की परमपुनीत आविर्भाव तिथिमे आरम्भ कर ८ फाल्गुन, शनिवार जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी "प्रभुपाद" की शुभाविर्भाव तिथि तक तीन दिनव्यापी श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान समितिके सभी मठोंमें सुसम्पन्न हुआ है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति कुशल नारसिंह महाराजके पौरोहित्यमें यह अनुष्ठान अतीव सुश्रृङ्खल रूपसे सम्पन्न हुआ है। प्रथम दिवस सवेरे कीर्तनके पश्चात् श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक त्रिदण्डि स्वामी भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने श्रीचैतन्य चरितामृतसे व्यासपूजा प्रसंगका प्रवचन करते हुए श्रीगुरु तत्त्व और श्रीश्रीव्यास पूजा पर सुन्दर रूपसे प्रकाश डाला। तदनन्तर श्रील आचार्य देवके श्री चरणकमलोंमें पुष्पांजलि अर्पित की गयी। शामको

एक सभाका आयोजन हुआ जिसमें त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज, श्रीहरिदास ब्रजवासी, श्रीकृष्ण स्वामीदास ब्रह्मचारी और श्रीमुरली मोहन ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने श्रीश्री-गुरु तत्त्वके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला। द्वितीय दिवस सबेरे और शामको कीर्तनके पश्चात् "श्रीश्रीवेदव्यास और उनका जगतको दान" के सम्बन्धमें श्रीसम्पादक महोदयने प्रकाश डाला। तीसरे दिन जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके श्रीपादपद्मोंमें पुष्पांजलि अर्पित की गयी तथा शामको पूज्यपाद त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त स्वामी महाराज और श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजीने "श्रील प्रभुपादके अप्राकृत जीवन चरित्र एवं उनकी शिक्षा" के सम्बन्धमें प्रकाश डाला। पहले और तीसरे दिन उपस्थित सबको श्रीश्रीमहाप्रसाद वितरण किया गया।

इसी प्रकार समितिके मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज की अध्यक्षतामें और श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ामें त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराजके पौरोहित्यमें यह अनुष्ठान महा समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। सर्वत्र ही परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुपादपद्मके उद्देश्यसे लिखित संस्कृत, हिन्दी, बङ्गला, अंग्रेजी और असामी आदि विभिन्न भाषाओंके प्रबन्ध एवं पद्य पढ़े गये। उपस्थित सबको महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठमें श्रीमंदिरका श्रीलआचार्यदेव द्वारा शिलान्यास

परमाराध्यतम श्रीश्रीलआचार्यदेव गत १३ वैशाख, २६ अप्रैलको कतिपय संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखामठ—'श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ, सीधाबाड़ी (पश्चिम बंगाल) में पधारे तथा उन्होंने वहाँ मठ प्रांगणमें श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-राधा-विनोद बिहारीजीके श्रीमंदिरका शिलान्यास १६ वैशाखको बड़े समारोह साथ तुमल हरिसंकीर्तनके माध्यमसे किया।

सीधाबाड़ी पश्चिम बंगालके बर्दवान जिलेमें पूर्वी रेलवेके प्रसिद्ध स्टेशन चित्तरंजनके समीप चारों ओर पहाड़ियोंसे घिरा हुआ दामोदर बाँधके ऊपर बड़े ही सुन्दर प्राकृतिक दृश्योंके बीच बसा हुआ एक स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान है। श्रील आचार्यदेव यहाँ पर कुछ दिन रह कर चुचुड़ा होते हुए १६ मईको श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें पधारे हैं।

दुमका (बिहार) जिलेके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार

समितिके विशेष प्रचारक त्रिदण्डि स्वामी भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज, त्रिदण्डिस्वामी भक्ति-वेदान्त उर्द्धमन्थी महाराज एवं कुछ ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर दुमका जिलेके सरसाजोल आदि स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका जोरोंसे प्रचार कर रहे है।

समितिके अन्यान्य उत्सव-समूह--

समितिके सभी मठोंमें २ वैशाख, १५ अप्रैल,

बृहस्पतिवारको "श्रीबलदेवकी रासयात्रा" १३ वैशाख, २६ अप्रैल सोमवारको 'श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी तिरोभाव तिथि, १८ वैशाख, १ मई, शनिवारको श्रीगौरशक्ति—'श्रीगदाधर पण्डितकी आविर्भाव-तिथि' और १ वैशाख, ४ मई, मंगलवार अक्षय तृतीयाके दिन "श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका प्रतिष्ठा दिवस" समारोह पूर्वक मनाया गया।

श्रीबलदेव—स्वयं-रूप-स्वयं भगवान श्रीकृष्णके वैभव प्रकाश हैं अथवा द्वितीय देह हैं। ये जीवोंके हृदयमें चिद्बल प्रकाशकर उन्हें कृष्णपादपद्म प्राप्ति के योग्य बनाते हैं। इसलिये ये गुरु-तत्त्व हैं। भगवत्तत्त्व होनेपर भी इनमें कृष्णदासका भाव रहता है।

श्रीवृन्दावनदास ठाकुर—श्रीचैतन्यलीलाके व्यास हैं। उन्होंने स्वरचित 'श्रीचैतन्यभागवत' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थमें श्रीगौर-नित्यानन्दकी लीलाओंका वर्णन किया है। यह ग्रन्थ गौड़ीय वैष्णव समाजमें श्रीमद्भागवतकी भाँति मान्य एवं प्रमाणिक ग्रन्थ है। इनका जन्म श्रीमन्महाप्रभुके कृपाप्रसादसे हुआ था।

श्रीगदाधर पण्डित—श्रीगौरशक्ति-स्वरूप हैं। श्रीमन्महाप्रभुके प्रति इनके भावको देखकर काष्ठ-पाषाण भी द्रवित हो जाते थे। विद्यार्थी जीवनमें निमाई (श्रीचैतन्य महाप्रभुके बचपनका नाम) के साथ ही संस्कृत विद्यालयमें पढ़ते थे। बचपनसे ही इनका निमाईके प्रति अपार प्रेम था। निमाई संन्यास ग्रहण कर जब जगन्नाथपुरीमें रहने लगे, तब ये भी संसार छोड़ कर श्रीचैतन्यमहाप्रभुके साथ ही क्षेत्र-संन्यास ग्रहण कर वहीं रहने लगे। ये श्रीमती राधिका के स्वरूप हैं। श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुका अर्चन पूजन दो प्रकारसे होता है—(१) श्रीगौर-विष्णुप्रिया विग्रहकी तथा (२) श्रीगौर-गदाधर विग्रहकी। श्रीगौर-गदाधरकी उपासनाका महत्व अधिक है। श्रीगदाधरजी श्रीमन्महाप्रभुके बिना थोड़ी देर भी नहीं रह सकते थे। श्रीमन्महाप्रभुजीके अप्रकट होने पर शीघ्र ही वे भी अप्रकट गौर-लीलामें प्रवेश कर गये।

अक्षय तृतीया—इसी दिन ॐविष्णुपाद १००८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की थी। इसलिये समितिके सभी मठोंमें इस तिथिको विशेष रूप से मनाया जाता है। यह एक पवित्र तिथि है। इसी दिन सत्ययुग प्रारम्भ होता है। इसी दिन बद्रीनारायणके प्रथम पट खुलते हैं। और इसी दिन श्रीजगन्नाथपुरीमें श्रीजगन्नाथदेवकी चन्दनयात्राका उत्सव खूब समारोहके साथ मनाया जाता है। इस वर्ष भी सभी मठोंमें इस पावन तिथिको समारोह पूर्वक मनाया गया है।

—निजस्व सम्वाददाता

———